RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-03
March-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

संस्कृत–हिन्दी रचनाओं में राष्ट्र धर्म

मानस कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, ल0ना0मि0विश्वविद्यालय, दरभंग–846004(बिहार)

'राष्ट्र' शब्द एक विशिष्ट भू–भाग अर्थात् देश या जाति से सम्बद्ध होता है। निश्चित भू–भाग अर्थात् देश या जाति का इतिहास उसका उत्थान–पतन और उसकी सभ्यता–संस्कृति, सभी राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में प्रतिष्ठित है और एक स्थानीय वैशिष्ट्य है जो मानव–मात्र को सामान्य भूमि से इस सम्पत्ति को पृथक करती है। इसी वैशिष्ट्य के आधार पर जातिगत एकता का सूत्र मान्य रहता है। इस एकता का सूत्र के साथ रागात्मक संबंध और उसकी सुरक्षा के प्रति कर्त्तव्य सामान्य रूप से राष्ट्रीयता के अन्तर्गत आते हैं। राष्ट्रीयता के इस व्यापक अर्थ के साथ एक विशेष अर्थ भी मान्य है। जब एक देश या जाति अपने अंधकार, अपनी दुर्बलता या एकता की शिथिलता के कारण अपने अधिकारों से वंचित हो जाती है तथा एक विजेता उसके श्रम एवं सम्पत्ति का शोषण करता है, तब असन्तोष जन्म लेता है। यह असन्तोष कण–कण एकत्र होकर एक ज्वालामुखी में बदल जाता है। विभिन्न एकता–सूत्र इस वातावरण में क्रान्ति के रूप में जन्म लेता है। सारे विगत वैभव और अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए जो क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं, इसी अन्तर्बाह्य संघर्ष को **राष्ट्रीयता** नाम से प्रतिष्ठित किया जाता हैं।

संस्कृत रचनाकार राजेन्द्र मिश्र का कहना है, कि देश की यह दुर्गति भ्रष्ट, अविवेकी, मूढ व दुष्ट राजनेताओं एवं प्रशासकों की गलत नीतियों तथा भ्रष्टाचरण के कारण हुई है। सम्पूर्ण भारतीय समाज व्याकुलता से भरा हुआ है। अयोग्य जन देश का संचालन कर रहे हैं तथा जनता बौराई सी उनका मुँह ताक रही है–

बण्ड–भण्ड–मूढधियां कृते सिद्धिसारम्
अपावृतं जनतन्त्रे मुक्तिमयं द्वारम्
मन्त्रिपदं कल्पपादपायते, सङातं निखिलं पर्याकुलम्।।
गृहे–गृहे क्रन्दनमथ दृशि–दृशि जलधारा
राज्यं विदहन्ति पंनदमप्यत्रराः
आतौस्तत्र रावणायते, सजातं निखिलं पर्याकुलम्।।
समाजाद्वरं नूनं समजोऽप्रतिगामी
क्रोधमोहकामादिषु परं स्वाभिमानी
अभिराजो हतप्रभो जायते, सङातं निखिलं पर्याकुलम्
राष्ट्रमिदं हन्त मन्दुरायते, सजातं निखिलं
पर्याकुलम्।।[1]

आज देश के रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं। सिद्धान्तों और आदर्शों का झुना–झुना बजाया जा रहा है तथा बहुरूपियों की तरह नानारूपों में स्वार्थी लोग घूम रहे हैं। सम्पूर्ण दुष्ट, दुराचारी, भ्रष्टाचारी, लम्पट व देशद्रोही लोगों के लिए राजनीति आश्रयस्थली बन गयी है। स्वार्थ की खातिर वे देश और समाज तो क्या अपने–आपको बेच डालते हैं। ऐसे लोगों के रहते किस देश का भला हो सकता है–

सञ्च्छामः सम्पश्यामः सन्तिष्ठामः क्षणे–क्षणे
संसदि किन्तु हते निजपक्षे, यूयं यूयं वयं वयम्।।
राष्ट्रमेकमस्माकं बन्धो! वयं भारतीया सर्वे
परं स्वजनपदपक्षरक्षणे, यूयं यूयं वयं वयम्।।[2]

कविवर राजेन्द्र मिश्र की संस्कृत रचनाओं में राष्ट्रवाद अपने चरम पर है। राष्ट्र की दुर्गति देखकर वे कहते हैं कि क्या यही स्वतंत्रता है।

हिन्दी रचनाकार साहिर क्रान्तिकारी शायर थे इसलिए उनके चिन्तन में राष्ट्रीयता का बहुत विकसित रूप देखने को मिलता है। उन्हें राष्ट्रीयता की ओर धकेलने वाले कारणों में मुसलमानों एवं हिन्दुओं के प्रति अंग्रेजों की दुर्भावना, हिन्दू–मुस्लिम सम्प्रदायों का परस्पर झगड़ा तथा भारतवर्ष के प्रति उनके अगाध प्रेम की भावना निहित थी। देश–समाज की बिगड़ी हुई स्थिति और परतन्त्रता के विरूद्ध देशभक्ति की ज्वाला को अपनी शायरी के माध्यम से प्रज्वलित करने का पुनीत कार्य किया। आजादी के बाद देश में जो साम्प्रदायिक तूफान खड़ा हुआ, उसने भी शायर को अन्दर तक झकझोर दिया। साहिर साम्प्रदायिक एकता के सच्चे पक्षधर थे। साम्प्रदायिकता के इस जहर ने साहिर को जीवनभर वेचैन कर दिया।

भारतवर्ष की जीवन धारा कही जाने वाली गंगा का गुणगाान साहिर ने बड़ी सजीवता से किया है। इस देश की जनता जब गुलामी का दंश झेल रही थी तो सदानीरा का नीर भी उसे रोता हुआ प्रतीत हुआ–

गंगा तेरा पानी अमृत, झर–झर बहता जाये
युग–युग से इस देश की धरती तुझसे जीवन पाये.....
इस धरती का दुख सुख तूने अपने बीच समाया,
जब–जब देश गुलाम हुआ है तेरा पानी रोया,
जब–जब हम आजाद हुए है तेरे तट मुस्कुराये.....।[3]

फिल्म **'नया दौर'** का ये गीत साहिर की देश प्रेम की भावना का एक और पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत करता है–

यह देश है वीर जवानों का,
अलबेलों का मस्तानों का,

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

इस देश का यारों क्या कहना, ये देश है दुनिया का गहना,
यहाँ चौड़ी छाती वीरों की, यहाँ भोली शक्ले हीरों की,
यहाँ गाते है राझें मस्ती में, मस्ती है घूमें बस्ती में.....।[4]

राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे का वर्णन भी तो देश–प्रेम की भावना को अभिव्यक्त करता है–

हर तरक्की के रस्ते पै मीलों चले–इस तिरंगे तले,
और आगे बढ़ेगें अभी मन चले–इस तिरंगे तले।[5]

एक ओर साहिर राष्ट्रीय गुणगाान एवं देश प्रेम के गीत लिखता जा रहा था तो दूसरी तरफ वह खुद देश को अपना अन्तर्मूल्यांकन करने की सलाह देता हुआ आगाह करता है और उसकी कमजोरियों की ओर इशारा करता है कि अगर देश ना सुधरा तो गुलामी दूर नहीं होगी। यथा–

अपने अन्दर जरा झांक मेरे वतन
अपने ऐबों को मत ढांक मेरे वतन!
तेरा इतिहास है खून में लिथड़ा हुआ
तू अभी तक है दुनियाँ में पिछड़ा हुआ,
रंग और नस्ल के दायरे से निकल
गिर चुका है बहुत देर अब तो संभल,
तेरे दिल से जो नफरत न मिट पाऐगी
तेरे घर में गुलामी पलट आयेगी,
तेरी बर्बादियों का तुझे वास्ता
ढूढ़ अपने लिए अब नया रास्ता.....।[6]

स्वाधीनता आन्दोलन की आँच में तपकर जो धर्म निरपेक्ष जीवन मूल्य विकसित हुए थे वे धीरे–धीरे धर्म सापेक्ष संस्कृति की ओर मोड़ दिये गये। साम्प्रदायिक दंगों ने धर्म निरपेक्षता, सहिष्णुता एवं राष्ट्रीय अखंडता पर गहरी चोटें दी। इस दर्द का अहसास साहिर ने बड़ी सजीवता से किया है और इस आग में खुद को सदैव जलता हुआ पाया। वह इस देश से सवाल पूछता है कि बताओं जो खून बहा है वह हिन्दू का है या मुसलमान का है? क्या दोनों के रंग अलग–अलग है।

दिनकर एक सशक्त गीतकार थे। ''**भारतेन्दु** ने **भूत** के गौरव का चित्रण करके देशवासियों की अलसाई आँखों को उन्मीलित करने का श्लाघनीय प्रयास किया। **मैथिलीशरण** गुप्त ने अपनी **'भारत भारती'** की गूँज से देश को सजग किया और **दिनकर** ने आलोक धन्वा की टंकार से उसे कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ किया।''[7] दिनकर ने उन्मुक्त कंठ से क्रान्ति के स्वरों का जयनाद किया। राष्ट्रव्यापी अधीनता की कालिका को उन्होंने निजी राष्ट्रीय अनुभूतियों के दूध से धोकर उसे प्रज्ज्वलित करने का प्रयास किया क्योंकि आपसी संघर्ष और लम्बी गुलामी झेल चुके भारतीय जनमानस का मन धूमिल हो चुका सा था लेकिन कवि दिनकर अपने आराध्य से प्रार्थना करके उसे जागृत करने का प्रयास करता है–

धुंधली हुई दिशाएं छाने लगा कुहासा
कुचली हुई शिखा ले आने लगा धुआँ सा,
कोई मुझे बता दे क्या आज हो रहा है?
मुँह को छिपा तिमिर में क्यों तेज रो रहा है?
दाता पुकार मेरी सन्दीप्ति को जिला दे,
बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।[8]
तू पूछ, अवध से, राम कहाँ?
वृन्दा! बोलो, घनश्याम कहाँ?
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक?
वह चन्द्रगुप्त बल धाम कहाँ?
री कपिल वस्तु! कह, बुद्ध देव
के वे मंगल उपदेश कहा?
वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी–शान कहाँ?[9]

कवि वर्तमान की खिड़की से जब भूतकाल की गौरवता को देखता है तो उसे वर्त्तमान युगीन स्थिति के प्रति निराशा और क्षोभ ही मिलता है जो करूणा बनकर क्रान्ति में रूपान्तरित होकर कविता की रसधारा में प्रवाहित होता है। दिनकर क्रान्ति युग के प्रतिनिधि कवि है। इसलिए स्वतन्त्रता युद्ध के सेनानियों की तरह उन्होंने भी अखण्ड भारत पर बलिदान देने का संदेश दिया। वे अंग्रेजों की ''फूट डालो राज करो'' की नीति के सदा विरोधी रहे। वे चाहते थे कि एक राष्ट्र के लिए सभी का अखण्ड विश्वास और भाव अचल हो जाये–

सपने जल जायें
सावधान! ऐसी कोई बात न हो।
उसके तन पर आघात न हो।
आदर्श माँगता सुधा आज
आदर्श माँगता शीतल जल
ओ एक राष्ट्र के विश्वासी
आदर्श माँगता भाव अचल।[10]

दिनकर की राष्ट्रीयता धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता है। हिन्दू और मुसलमान को वे भारत की दो आँखें मानते थे। उन्होंने नौआखली और बिहार के साम्प्रदायिक दंगों से पूरे देश को आगाह किया और एकता का समर्थन किया–

जलते हैं हिन्दू–मुसलमान
भारत की आँखें जलती है,
आने वाली आजादी की
लो! दोनों पाँखें जलती है।
ये छूरे नहीं चलते छिदती
जाती स्वदेश की छाती है,
लाठी खाकर भारत माता
बेहोश हुई–सी जाती है।[11]

दिनकर समस्त भारतवासियों एवं सरहद के जवानों को अपने राग में छिपी आग सौंपते हुए कहते हैं कि अब वक्त आ गया कि आँधी पर सवार हो जाओं, डाल पर अग्नि पुरुषों की तरह पुष्पित हो, हिन्दी–चीनी भाई–भाई की द्विविधा को भूलो, सामने वृक है या व्याल, जीवित न लौटे–

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

झंझा–झकोर पर चढ़ो, मस्त झूलो रे!
वृत्तों पर वन पावक–प्रसून फूलों रें!
दाएँ–बाएँ का द्वन्द्व आज भूलो रे!
सामने पड़े जो शत्रु, शूल हूलो रे!
वृक हो कि व्याल, जो भी विरूद्ध आयेगा
भारत से जीवित लौट नहीं पायेगा।[12]

दिनकर का स्पष्ट संदेश था कि जब विनय से काम ना चले तब तो प्रत्यंचा खीचनी ही पड़ेगी–

विनय विफल हो जहाँ, बाण लेना पड़ता है।
स्वेच्छा से जो न्याय नहीं देता है, उसको
एक रोज आखिर सब कुछ देना पड़ता है।[13]

रामधारी सिंह दिनकर के भावों के ज्वार एवं वैचारिक बोध के तूफान की परिणिति जिस केन्द्र पर होती है वह राष्ट्रधर्मा बन्धुत्व से लेकर विश्वबन्धुतव एवं मानव प्रेम के क्षितिज पर अमिट छाप छोड़ती है। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का पथ सरल एवं सीधा नहीं रहा। कवि द्वन्द्वमुक्त नहीं हो सके। उन्हें युधिष्ठिर और भीष्म, गाँधी और परशुराम के बीच चुनाव करना पड़ता है। अहिंसावादी राष्ट्रीयता के युग में हिंसा के स्वरों को जगाये रखना कवि के साहस का परिचय है। दिनकर की राष्ट्रीयता पौरुष की दीप्त क्रान्ति की चिंगारी, रक्तदान और महानाश के तत्वों से निर्मित है। आदर्श रूप में चाहे उच्च्तर मानव फूलों को कवि ने स्वीकार किया हो, परन्तु साधन के रूप में उसने विवश होकर हिंसात्मक क्रान्ति को ही स्वीकार किया है। इस प्रकार संस्कृत एवं हिन्दी के कवियों ने अपनी–अपनी रचनाओं में राष्ट्र के एक विकसित रूप को प्रस्तुत किया है। जिसमें भूत–वर्त्तमान एवं भविष्य की गौरवशाली राष्ट्र की रूपरेखा मिलती है।

संदर्भ सूचीः–

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनि–'रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्', प्र. 58–59 तथा अभिराजगीता, पृ0–90
2. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनि–'रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्', प्र. 60 तथा अभिराजगीता, पृ0–90
3. रामधारी सिंह दिनकर, 'चक्रवाल की भूमिका', दिनकर रचनावली, भाग–4, पृ0 307
4. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, फिल्म 'गंगा तेरा पानी अमृत', पृ0 20
5. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, फिल्म 'नया दौर', पृ0 20
6. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, पृ0 131
7. साहिर लुधियानवी, गाता जाए बंजारा, पृ0 117
8. रामधारी सिंह दिनकर, 'आग की भीख' (सामधेनी), दिनकर रचनावली, भाग–2, पृ0 160
9. रामधारी सिंह दिनकर, हिमालय के प्रति (रेणुका), दिनकर रचनावली, भाग–1, पृ0 81
10. रामधारी सिंह दिनकर, हे मेरे स्वदेश (सामधेनी), दिनकर रचनावली, भाग–1, पृ0 191
11. उपरिवत्, पृ0 189
12. रामधारी सिंह दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, दिनकर रचनावली, भाग–1, पृ0 374
13. उपरिवत्, पृ0 332

© RRIJM 2015, All Rights Reserved